धारणाएं जीवन को जानने में बाधा बनती हैं। धारणाओं से बंधा मनुष्य, सत्य की ओर नहीं जा सकता। यदि मैं कुछ भी धारणाएं बनाकर, सत्य को जानने का प्रयत्न करूँ, तो मेरा मन धारणाओं से घिरा होने के कारण, मैं वास्तविक सत्य के दर्शन नहीं कर पाऊंगा। लेकिन फिर भी, हम सब अनेक धारणाएं बना लेते हैं। इसके पहले कि हम वास्तविक सत्य से रूबरू हों, हम अज्ञानता में उसके प्रति कोई भी दृष्टिकोण बना लेते हैं। जो भी विश्वास या नजरिये नासमझी में बनाए जाते हैं, वे सत्य के अनुरूप नहीं हो सकते।

मेरा कहना यह है जो भी सत्य हो, उसके संबंध में कोई भी पूर्वधारणा बनानी उचित नहीं है। ज्यादा योग्य और उचित है, कि हम धारणामुक्त होकर अपनी तरफ से कुछ आरोपित ना करें और शांत होकर सत्य की तरफ आगे बढ़ें। जिस क्षण मैं बिल्कुल धारणाशून्य हो जाऊँगा, सत्य पर कुछ भी आरोपित नहीं करना चाहूँगा, जिस क्षण मेरा समस्त अज्ञान में घिरा विचार विसर्जित हो गया हो, जिस क्षण जो भी मुझे ज्ञात है मिट जाएगा, उस क्षण जो अज्ञात है वह प्रकट होगा। मुझसे जब भी कोई पूछता है कि इन कपोल-कल्पित विचारों, विश्वासों या अनेक प्रचलित धारणाओं के संबंध में, कि आप इनके पक्ष में हो या विपक्ष में, ये ठीक हैं या गलत; तब मैं दोनों तरफ से बचने की कोशिश करता हूँ। मैं किसी भी रूप में आपको कोई धारणा नहीं देना चाहता। समस्त दी गई धारणाएं सत्य को जानने में बाधक हैं, जबकि जानने का मार्ग सुगम है। तो जानने से पूर्व क्यों हम व्यर्थ में कचरा इकट्ठा करें और उस समय हमारी मनोकामनाएँ भी इन धारणाओं के पीछे काम करती हैं।

हम सोचते हैं- हम पुर्नजन्म पर विशुद्ध रूप से विचार कर रहे हैं। नहीं कर रहे; हम जीना चाहते हैं, हम मिटना नहीं चाहते। जीवन में जीवेषणा इतनी तीव्र है, यह जीवित रहने की आकांक्षा इतनी प्रबल है कि हम आश्वस्त होना चाहते हैं। चाहे शरीर गिर जाए, पर हमारे भीतर कुछ बाकी बचे, हम विश्वस्त होना चाहते हैं कि हम हमेशा रहेंगे। परन्तु, जो सिद्धान्त हमें वाकई आश्वस्त करेंगे, उनकी सत्यता के कारण हम उनको नहीं मानते, बल्कि इस कारण मानते हैं कि हमारी एक आकांक्षा की तृप्ति हो, वह है जीवित रहने की आकांक्षा का पूर्ण होना। और जिन धारणाओं को हम वासनाजन्य कारणों से स्वीकार कर रहे हैं, वे हमें सत्य तक नहीं ले जा सकतीं। तो मैं नहीं कहता कि पुनर्जन्म है, ना ही मैं यह कहता हूँ कि पुर्नजन्म नहीं हैं। मैं चाहता हूँ कि आप धारणामुक्त होकर शांत होकर उस स्थिति में पहुँचे कि जहाँ जो है वह वैसा ही दिखाई दे। उस दिन जो आप जानेंगे वो जानना वास्तविक होगा। उसके पूर्व, सब किताबी और सैद्धांतिक बातें हैं। अच्छे-अच्छे शब्द, अच्छी-अच्छी बातें, कचरे की तरह मस्तिष्क में एकत्रित होती चली जाती हैं, और जितनी इनकी पर्त घनी होने लगती है, उतना ही शांत होना कठिन प्रतीत होता है। जितनी इनकी धूल बढ़ने लगती है, उतनी ही सत्य के और हमारे बीच दीवार खड़ी होने लगती है। मनुष्य जिसे ज्ञान कहता है, वह वास्तविक ज्ञान के बीच रूकावट है। स्वयं मनुष्य द्वारा निर्मित यह ज्ञान, यह असत्य उसे अस्तित्वगत सत्य से दूर रख रहा है।

ना तो ज्ञान लेकर वहाँ जाना, ना धारणाएं लेकर, ना सिद्धांत लेकर और ना दार्शनिक विचार लेकर। वहाँ तो जो बिल्कुल नग्न और शांत, शून्यावस्था में खड़े होने को राजी हैं, उसके लिए प्रकृति अपने द्वार खोलती है। उसके सामने से रहस्य के पर्दे उठ जाते हैं। जो स्वंय नग्न होने को तैयार है, सत्य उसके सामने नग्न होता है। मैं कोई धारणा नहीं जोड़ना चाहता। इसलिए, किसी धारणा के पक्ष में कहूँ या विपक्ष में कहूँ, आपके लिए वह भी एक नई धारणा बन जाती है।

मेरी पूरी-पूरी कोशिश एक छोटी-सी मुख्य बात की है कि आप किसी प्रकार से विचार मुक्त होकर थोड़े क्षणों में इतने शांत हो जाएं कि जो सचमुच है; वह प्रकट हो और हम उसके सम्बन्ध में कुछ भी मान्यता लेकर ना जाएं। हम सब किसी ना किसी प्रकार की धारणाएं लेकर चलते हैं; कोई ईश्वर की, कोई आत्मा की, तो कोई मोक्ष की। मस्तिष्क के ये सब छुद्र विचार, विराट का प्राकट्य नहीं होने देते। हमारे श्रेष्ठतम सिद्धांत भी, उस विराट को प्रकट करने में अत्यंत छुद्र हैं। हमारे श्रेष्ठतम शब्द भी, उस सत्य को प्रकट करने में दो कौड़ी के हैं।

मेरी जो स्थिति है वह बहुत भिन्न है। भिन्न इन अर्थो में कि मैं नहीं कहता कोई भी धारणा बनाई जाए। मंतव्य यह है कि मस्तिष्क, जितना धारणाओं से भरेगा उतना ही उद्विग्न, अशांत व तनाव में रहेगा और व्यक्ति उतना ही ध्यान में कम जा पाएगा। मेरे अनुसार ध्यान का अर्थ है- विचार शून्यता। जब हम विचार शून्य हो जाते हैं तब ज्ञान का उदय होता है। विचार ज्ञान नहीं हैं। पुनर्जन्म के संबध में जानना, पुनर्जन्म को जानना नहीं है। ईश्वर के संबध में जानना, ईश्वर को जानना नहीं है। ईश्वर के संबध मे जानना सब झूठा और उधार है, उस उधार से कोई सत्य तक नहीं पहुँच सकता।

भारत में बहुत सिद्धांत हैं। मैं नहीं कहता कि आप इस सिद्धांत को मानें या उस सिद्धांत को। एक सिद्धांत हिंदुओं का है जो पुनर्जन्म में विश्वास रखता है, और एक सिद्धांत बौद्धों का है, जो कहते हैं पुनर्जन्म है लेकिन उसका अर्थ दूसरा ही है। एक अन्य मत औरों का है, जिनके अनुसार कोई पुनर्जन्म नहीं है। इन सारे सिद्धांतों और बौद्धिक विवादों में उलझना, तर्क से कुछ तय कर लेना, सत्य तक नहीं पहुँचा सकता। हम अपने तर्क, संस्कार और घर के वातावरण में सीखी गई बातों से सत्य को तय कर लेते हैं।

अगर आप नास्तिक हवा में पैदा हुए हैं, नास्तिक शिक्षण आपको मिला है तो तय कर लेंगे कि कोई पुनर्जन्म नहीं है और आप ऐसे विचारकों का उल्लेख करने लगेंगे कि देखो उसने भी ऐसा कहा है, ऐसा लिखा है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ मिल जाएंगे, जो कहेंगे कि कहीं पुनर्जन्म नहीं है। अगर आप जैन धर्म में पैदा हुए हैं, तो जैनियों की जो पुनर्जन्म की धारणा है उसे पकड़ लेंगे। अगर बौद्ध धर्म में पैदा हुए हैं तो कहेंगे कोई आत्मा नहीं है। अगर सोवियत रूस में पैदा हुए तो कोई पुनर्जन्म नहीं है। और अगर, भारत में पैदा हुए हैं, तो पुनर्जन्म हैं। ये जो विचार आप पकड़ रहे हैं, ये केवल संस्कार, वातावरणीय हवा का प्रभाव है, इसका सत्य से कोई संबंध नहीं है। मैं केवल हिन्दू से, जैन से, बौद्ध से नहीं कहता कि तुम्हारे जो विचार हैं, उन्हें छोडकर सत्य की तरफ चलो। मै आस्तिक-नास्तिक सभी से कहता हूँ कि सारी धारणाओं को छोड़कर सत्य की ओर बढ़े चलो, सत्य से साक्षात्कार करो। सभी धारणाएं- ईश्वर को मानना, न मानना, पुनर्जन्म एक-सी फिजूल बातें हैं। इनको छोड़ दो और जीवन की उस तलहटी में उतरो, जहाँ तुम उस स्रोत को, उस सत्य को देख पाओगे, जो सचमुच है। और तभी तुम जान पाओगे कि उस क्षण जो जाना जाता है, रहस्य उसी से खुलता है। उसके पूर्व रहस्य पर पर्दे गिरते चले जाते हैं।

प्रश्न- हर एक चीज की प्राप्ति के लिए जो साध्य है, उसके लिए कोई न कोई साधन तो चाहिए ही। परमात्मा को पाने के लिए, साधना करना, यौगिक कार्यों के लिए प्रवृत्त होना, ये सब साध्य तक पहुँचने के मार्ग हैं। परन्तु, मन की प्रवृत्ति विचित्र है, वह साध्य को प्राप्त करने के उपरोक्त कार्यों को साधने में सदा व्यवधान उत्पन्न करता है, ऐसे में मनुष्य साध्य तक पहुँचने में कैसे सफल हो?

कुछ बहुत आधारभूत बातें हैं, जो यदि समझ ली जाएं तो पूरा प्रश्न सुलझ जाएगा। पूरे जीवन में हम जो कुछ भी प्राप्त करते हैं, किसी साधन से ही उसकी प्राप्ति होती है। धन, यश, ज्ञान कुछ भी पाने का कोई न कोई

साधन होता है। चूंकि जीवन में कुछ भी पाने के लिए साधन लगता है इसलिये हमें लगता हैं, सत्य को पाने के लिए भी साधन लगेगा। ये तर्क इतना भ्रांत और स्वाभाविक है कि इसके कारण सत्य को नहीं पाया जा सकता।

सत्य, जीवन की कोई सामान्य वस्तु नहीं है, बल्कि वह तो समस्त जीवन का केन्द्र है। जैसे मैं आँख से सबको देखता हूँ, अब मैं अपनी आँख को भी यदि आँख से देखना चाहूँ तो भूल में पड़ जाऊंगा। बात दुरुस्त है! जो देख रहा है उसे हम देखे जाने वाली वस्तुओं में नहीं गिन सकते। सब कुछ जीवन में साधन से पाया जाता है। लेकिन जो पाता है, और उसे पाना हो तो साधन काम नहीं देते हैं। इस भेद को स्पष्ट रूप से समझना जरूरी है, नहीं तो सारी भूल यहीं से शुरू होती है। जिस ढंग से मैं आपको देख रहा हूँ उस ढंग से मैं अपने को नहीं देख सकता। मै दृश्य के साथ दृष्टा को नहीं देख सकता, वह कुछ बुनियादी रूप से अलग है। संसार में जो कुछ भी पाया जाता है, उसके मूल में कोई न कोई साधन होता है।

परन्तु, मोक्ष संसार की वस्तु नहीं है, इसलिए मोक्ष को साधन से नहीं पाया जा सकता और अगर हमने साधन से ही मोक्ष को पाना चाहा, तो हम मोक्ष को नहीं पा सकते। यूँ समझे कि मैं कमरे में कोई चीज खोज रहा हूँ तो मुझे उठना होगा, जाना होगा, ढूँढना होगा, तलाश करनी होगी। लेकिन मैं अपने को पाना चाहता हूँ तो मैं कहाँ जाऊंगा, कैसे तलाश करूँगा अपनी? अगर मैंने खुद की तलाश की, तो शायद मैं अपने को ना पा सकूँ और अगर मैं सारी तलाश छोड़कर शांत बैठ गया, तो शायद उस सारी तलाश को छोड़ देने में, उस अनंत शान्ति में मैं स्वयं को पा लूंगा। सारा संसार खोजकर पाया जाता है, केवल सत्य को खोज के नहीं पाया जा सकता। सत्य तो मैं ही हूँ, उसे खोज छोड़कर पाया जाता है। जिस क्षण मैं समस्त खोज छोड़ देता हूँ, अचानक स्वयं को पा लेता हूं, क्योकि खोज ही अशांति थी। इसे कुछ यूँ समझे कि जब तक मैं 'अ' पर खड़ा हूँ और 'ब' पाना चाहता हूँ, यानि एक स्थान पर खड़ा हूँ, और दूसरे को पाना चाहता हूँ, तब तक जहाँ मैं खड़ा हूँ, वहाँ से असंतुष्ट हूँ। मेरी सारी आशा का केन्द्र उस साध्य पर लगा है, जिस साध्य को पाने की कल्पना कर रहा हूँ। जब तक कुछ पाना चाहता हूँ, तनाव होगा, खिंचाव होगा, दौड़ होगी, वासना होगी, असंतोष होगा, अतृप्ति होगी। जब तक मैं कुछ भी पाने को लालायित हूँ, तब तक मैं अशांत हूँ। विश्रांति तक मेरी पहुंच नहीं है। अशांति मुझमें व्याप्त है और अशांति के बीज बोकर शांति के फल नहीं आ सकते।

प्रश्न- क्या निष्क्रियता ही शांति प्राप्त करने का सूत्र है?

दरअसल, जिस शब्द को निष्क्रिय कहते हैं अगर उसे पूरी तरह से समझ लें तो आप हैरान होंगे। अगर आप निष्क्रिय हो जाएँ तो आप निश्चित ही शांति को पा लेंगे। लेकिन, निष्क्रिय होने का अर्थ बहुत कठिन है। हम निष्क्रियता को जानते ही नही हैं, हम हमेशा सक्रियता को जानते हैं। हमारी निष्क्रियता का कुल इतना मतलब है, कि एक आदमी अगर लेटा हुआ है, तो हम कहते हैं कि निष्क्रिय है। लेकिन वह निष्क्रिय नहीं है, उसका मन काम कर रहा होगा। और, एक आदमी यदि बैठकर कल्पना कर रहा है, सपने देख रहा है और सपने में चित्र बना रहा है। सपने में वह राजा, धनी और समृद्ध हो रहा है, बादशाह हो रहा है, अर्थात वह सक्रिय है। अगर पूर्ण निष्क्रिय एक क्षण को भी हो जाएं, बाहर के जगत में कोई क्रिया नहीं हो रही, पर भीतर के जगत में भी कोई क्रिया नहीं हो रही हो, यह पूर्ण निष्क्रियता है। सभी क्रियाएं बंद हैं, एकदम चुप और मौन घटित हो रहा हो, तब सब शून्य हो जाता है, यही शून्यावस्था है। निष्क्रियता में कोई साधन नहीं हो सकता, क्योंकि साधन तो हमेशा कुछ पाने के लिए हैं। और, जहां कुछ पाना है वहां अशांति, तनाव और दौड़ है। इस स्थिति को पाने के लिए, विचारशून्य होकर स्थिर बैठना ही एकमात्र उपाय है।

कई चर्चाएं प्रचलित हैं, जैसे कोई कहता है भक्ति से होगा, भक्तियोग साधना चाहिए। किसी का कहना है ज्ञान से होगा, ज्ञानयोग को साधो। तो किसी का मत है कर्म से होगा, कर्मयोग ही श्रेष्ठ साधना है। मगर, मेरा जानना बहुत विपरीत है। मेरा जानना इतना विपरीत है कि कहने में भी कठिनाई होती है कि कैसे कहूँ? मेरा कहना है कि ये तीनों ही योग नही हैं सत्य तक पहुँचने के। ये सत्य को उपलब्ध व्यक्ति के अपने आनंद को प्रकट करने के तीन मार्ग हैं। ये सत्य तक पहुँचने के साधन नही हैं। जो सत्य तक पहुँच गया है, वो सत्य को इन तीन मार्गों से प्रकट करता है। अर्थात यह सिद्ध की अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं। इसका अर्थ हुआ कि भक्त वो नहीं है जो भगवान को पाना चाह रहा है, बल्कि भक्त वह है जिसने भगवान को पा लिया है, क्योंकि प्राप्ति से उसके जीवन में भक्ति आ जाती है। ज्ञानी वो नहीं है जो सत्य को पाने की चेष्टा में लगा है, ज्ञानी वो है जिसने सत्य को देख लिया है। परिणाम में उसके पूरे जीवन में ज्ञान और विवेक का आचरण आ गया। कर्मयोगी वह नहीं है, जो साधन में सत्य को पाने की चेष्टा में लगा हुआ है या जिसने सत्य को, ब्रह्म को, आत्मा को आत्मसात कर लिया है। उसके समस्त कर्म में वही शांति, वही आनंद, वही प्रभु विराजमान हो गया है। उसका समस्‌त कर्म सेवा में परिणत हो गया है। लोग कहते हैं भक्ति, कर्म और ज्ञान प्रभु तक जाने के मार्ग हैं। परन्तु, वास्तव में प्रभु तक जाने का कोई मार्ग नहीं है।

'मार्ग, मात्र संसार में ले जाते हैं।'

जहाँ मनुष्य की समस्त दौड़ खत्म हो जाए, जहाँ वो शून्य में विराजमान हो सके, वहाँ प्रभु तक पहुँचना घटित होता है। इसका अर्थ है कि जो ऐसी स्थिति में उपलब्ध हो जाना है, वह पंथहीन मार्ग है, मार्गहीन मार्ग है। कहीं पहुँचना नहीं है। मनुष्य जहाँ है इसी को जान लेना है। जहाँ आप हैं, जो आप हैं, वहीं सत्य विराजमान है। लेकिन अपने भागने के कारण, दौड़ के कारण, आकांक्षा के कारण, इसे नहीं देख पा रहे हैं।

एक प्राचीन कथा है। एक बार प्रजापति के पास इंद्र और विरोचन ये पूछने गए कि मैं कौन हूँ, ये कौन है, जो मेरे भीतर बैठा है? प्रजापति ने कहा पास ही एक सरोवर है, वहाँ जाकर देखना जो तुम्हें दिखाई पड़े, उस सरोवर की प्रतिछाया में, वही तुम हो।

वे दोनों गए, वहां पहुंचकर पानी में अपनी तस्वीर देखी, अपना स्वरूप देखा। विरोचन बोला, ठीक है। जो दिखाई पड़ रहा है, यही मैं हूँ। विरोचन संतुष्ट हुआ, इंद्र को भी, एक क्षण को लगा, जो दिखाई पड़ता है, वही मैं हूँ। वो भी जाने लगा, लेकिन मार्ग में उसे यह ख्याल आया, जो दिखाई पड़ा, अगर मैं वह हूँ तो जिसको दिखाई पड़ा, वो कौन है? एक तो दिखाई पड़ा और एक देखने वाला भी है, वह वापस लौटा और कहा, मैं संतुष्ट नही हूँ।

उसने प्रजापति को कहा जो दिखाई पड़ा वह तो समझ गया, लेकिन जिसे दिखाई पड़ा वो कौन है?

प्रजापति बोले, तुमने ठीक सोचा। जिस मन को दिखाई पड़ा, जिस विचार को दिखाई पड़ा, वही तुम हो।

इंद्र फिर वापस लौटा। रास्ते में ख्याल आया लेकिन कई क्षण ऐसे होते हैं, जब कोई विचार नहीं होता, मन भी नहीं होता है, तब भी मैं होता हूँ। गहरी निद्रा में मन नहीं होता, लेकिन मैं होता हूँ। फिर उसे ये भी दिखाई पड़ा कि कई बार मैं देखता हूँ, तो मन के विचार भी चलते हुए दिखाई पड़ते हैं। क्रोध आया, अब क्रोध चला गया, ये कौन देखता है? जोकि मन के विचार भी देखता है, तो मन भी मैं नहीं हो सकता।

इंद्र फिर से वापिस लौटा और प्रजापति से कहा, मैं अभी भी संतुष्ट नहीं हुआ। मुझे तो ऐसे लगता है कि ये मन के पीछे भी कोई बैठा है, जो इसे देखता है।

प्रजापति बोले, अब तुम ठीक जगह पहुँच गए। अब, इसके आगे निषेध संभव नहीं। जो सबका दृष्टा है, वही तुम हो, वही सत्य है।

कुछ करना नहीं है, केवल शांत होते जाना है, और व्यक्ति दृष्टा तक पहुँच जाता है। मगर ध्यान रखना, ये शांत हो जाना, कोई पद्धति नहीं है, इस शांत हो जाने के न कोई उपाय है, ना कोई विधि है और ना ही कोई मार्ग है। बस, ठीक से इस बात को समझ लेना ही पर्याप्त है। और, अगर किसी उपाय का उपयोग भी किया जाता है, तो बड़ा कृत्रिम है। एक कृत्रिम व्यवस्था भर कर सकते हैं, जिससे थोड़ा बहुत सहारा मिल सकता है। लेकिन, जिस दिन आपको शांति उपलब्ध होगी, आप जानेंगे ये तो थी ही। इसको भी पाने के उपाय किए, यह भ्रांति थी।

एक बार जापान में एक साधु के पास एक युवक गया। साधु ने पूछा, क्या चाहते हो? उसने कहा, मैं बुद्ध होना चाहता हूँ। साधु ने एक करारा चाँटा मार दिया। युवक को कल्पना नहीं थी, कोई चाँटा मार देगा। युवक बोला, ये क्या करते हैं? मैं पूछने आया और आपने चाँटा मार दिया।

साधु ने कहा, यदि कोई बुद्ध ही बुद्ध होना चाहे, तो मैं चाँटा ना मारुं तो और क्या करूं?

तुम हो। इसे जानो। होना कुछ भी नहीं, हम हैं ही वहाँ। इसलिये कोई साध्य नहीं बनाएं। सब साध्य छोड़ देने हैं। इस साध्य को छोड़ देने की जो कृत्रिम प्रक्रिया है, वह ध्यान है।

ध्यान एक कृत्रिम प्रक्रिया है। जैसे बच्चे को अ, ब, स सिखाते हैं और कहते हैं, स से सड़क, ग से गणेश, यह कृत्रिम सहारा है। जिस दिन वह समझ जाएगा, तब उसमें यह समझ भी आएगी कि ग को गणेश से क्या लेना-देना है? ऐसे ही, ध्यान बहुत कृत्रिम प्रक्रिया है, उससे कोई सत्य तक नहीं पहुँचता, लेकिन एक इशारा, एक संकेत उससे हो जाता है। अब मैं उंगली उठाकर चाँद दिखाऊँ, अंगुली को भला चाँद से क्या लेना-देना! लेकिन, यह चाँद दिखाने में सहयोगी हो सकती है। ऐसे ही ध्यान की प्रक्रिया एक हवा पैदा करती है, वातावरण पैदा करती है सत्य तक जाने के लिए। ध्यान कोई क्रिया नहीं है। आमतौर से साधक मंदिर-मस्जिद में बैठते हैं और समझते हैं कि कोई भारी काम कर रहे हैं, क्रिया कर रहे हैं। जहाँ भी क्रिया का भाव आया, बस वहीं तनाव आ जाता है। जबकि, वास्तविक ध्यान में क्रिया का त्याग चाहिए, शिथिलता चाहिए। ध्यान की जिस पद्धति की मैं चर्चा कर रहा हूँ, उसमें कुछ करना नहीं होता, सब शिथिल होने मात्र से होता जाता है। शरीर को, श्वास को और मन और विचार को भी शिथिल करके छोड़ते चले जाते हैं, यह एक आत्म-सम्मोहन है।

आप हैरान होंगे, योग के अद्भुत अनुभवों के बारे में जानकर। अगर, इस हाथ को पाँच मिनट बैठकर सुझाव दें कि यह हाथ बिल्कुल शून्य हो गया है, कहते जाएं और ठीक वेसा ही अनुभव करते जाएं, तब 5 मिनट बाद इस हाथ को आप उठा नहीं सकेंगे। यह हाथ जड़ होकर यहीं पड़ा रह जाएगा। हाथ को आप शून्य कर नहीं सकते, परन्तु आत्म-सम्मोहन के द्वारा आप हाथ की शून्यता को अनुभव कर सकते हैं।

जिस ध्यान की पद्धति की मैं बात कर रहा हूँ, उसमें सिर्फ सुझाव दिया जाता है, संकेत दिया जाता है और शरीर को सम्मोहित एवं शिथिल किया जाता है। आप शरीर के पीछे हट जाते हैं और देख पाते है कि शरीर अलग है, और आप अलग हैं। मैं वह प्रयोग कर रहा हूँ, रोज 10-20 लोग वहाँ गिर जाते हैं, 2-3 मिनट के सुझाव के बाद ही गिर जाते हैं। रोज लोग मुझसे कहते हैं, हमें शरीर का पता नहीं चला, घबराहट मालूम पड़ रही है।

फिर श्वास के सुझाव देता हूँ कि आपकी श्वास धीमी होती जा रही है और आप पाते हैं, श्वास बिल्कुल धीमी हो गई। मुझे कई बार लोगों ने शिकायत की है कि आप ज्यादा सुझाव मत दीजिएगा, क्योंकि हमें लगता है श्वास गई, अब लौटेगी नहीं। जैसे ही शरीर और श्वास शिथिल हुए, हम विचारों से एकदम खाली हो जाते हैं। विरल, कोरे आकाश समान हो जाते हैं।

फिर दो मिनट तक सुझाव कि विचार समाप्त हो रहे हैं। जिन विचारों को लड़-लड़कर नहीं काट सकते, उनको कह देने मात्र से चले जाते हैं। पर यह जान लीजिये कि मन कोई दुश्मन नहीं है, लड़ते थे, इसलिए परेशानी थी। वास्तव में वह शत्रु नहीं है, बल्कि इससे बड़ा दोस्त मिलना कठिन है। अब इशारा किया कि चले जाओ और चले जाते हैं। दो मिनट के सुझाव में मन गया और कोरे शून्य में उतर जाते हैं। ना कोई धारणा रह जाती, ना कोई विचार रह जाता, न कोई भक्ति और न भगवान, न कोई ज्ञान-ग्रन्थ-सिद्धांत ही रह जाता तथा न कोई दर्शन और न आप ही रह जाते। एक अविरल, अखण्ड शून्य में आप उतर जाते हैं। थोड़े ही दिन में आप पाते हैं, यह अखण्ड शून्य आपकी संपत्ति हो गया है।

ये जो अखण्ड शून्य का अनुभव है, ये सारी ग्रंथियाँ खोल देता है। सारे प्रश्न खोल देता है, और आप वहाँ खड़े हो जाते हैं, जिसको पाने की आकांक्षा है। और तब पाते हैं कि अगर मैं खोजने में लगा रहता तो यह सत्य नहीं पाया जा सकता था। जिसने भी कहा "जिन खोजा तिन पाइंया" बड़ी झूठ बात हैं, जो खोजने निकलेगा, वो खो देगा। खोजने में ही खोना शुरू हो गया। इसे हम कह सकते हैं "जिन खोया तिन पाया" जो सब खो देगा, वो सब पा लेगा।

ध्यान, बस खो देने की प्रक्रिया है। एक क्षण में, पहले दिन भी खो सकते है, या थोड़ा समय लग सकता है क्योंकि हमें खो देने की आदत नहीं है। आपके कोई पाप बाधा नहीं बन सकते, क्योंकि सब पाप, सब बुराई, सब-अज्ञान नकारात्मक हैं।

इस कमरे में अंधेरा है, अंधेरे की सत्ता नहीं है। कोई कहे कि दिया जलाने में अंधेरा बाधा देगा, मैं कहूँगा वो बाधा नहीं बन सकता, वो नकारात्मक है। दीया जलेगा, वो आड़े नहीं आएगा। आपके समस्त संस्कार कितने ही जन्मों के हों, नकारात्मक हैं, वो बाधा नहीं दे सकते। आपकी सब प्रवृत्तियाँ, वे बाधा नहीं हो सकतीं। एक बार, ध्यान का दीया जला कि सब अंधेरा मिट जाएगा। अंधकार इसलिए है कि दीया नहीं है। और, पाप और बुराई इसलिए है कि ज्ञान नहीं है। ध्यान का दीया जगते ही, अज्ञानता नष्ट हो जाएगी और वास्तविक ज्ञान का उदय होगा। यह सबसे सरलतम प्रणाली है।

लेकिन हम सब कुछ जाने बिना धारणा बना लेते हैं। हम उस चीज के प्रति अज्ञानता में कुछ धारणा पकड़ लेते हैं। जो धारणाएं अज्ञानता में बनाई गई हैं, वे सत्य के अनुरूप नहीं होती। मेरा मानना है, जो भी सत्य है, उसके संबंध में पहले से ही कोई धारणा बनाना उचित नहीं। सर्वाधिक उचित यही है कि हम धारणामुक्त होकर, अपनी तरफ से कुछ आरोपित ना करते हुए, शांत होकर उस तरफ बढ़ें जहाँ सत्य है, उस ओर आगे बढ़े। जिस क्षण मैं धारणा से मुक्त होना शुरू करूँ, जिस समय मेरा अज्ञानता में इकट्ठा किया विचार विसर्जित हो, जिस क्षण ज्ञान मिटकर अज्ञान प्रकट हो, वही क्षण मुझे सत्य तक पंहुचा देगा। जब मुझसे कोई पूछता है कि आप प्रचलित धारणा के पक्ष या विपक्ष में हो तो मैं उससे बचने की कोशिश करता हूँ। समस्त धारणाएँ सत्य को जानने में बाधा बनती हैं। जब जानने का मार्ग सुगम है, तो पहले हम अज्ञान का कचरा इकट्ठा क्यों करें? मनुष्य जिसे ज्ञान कहता है, वह वास्तविक ज्ञान के बीच रुकावट है। जो सम्पूर्ण रूप से खाली और धारणाशून्य है, प्रकृति उसके लिए अपने द्वार खोलती है।

मेरा कहना है कि आप विचारशून्य होकर शांत हो जाएं। छुद्र धारणा हमारे विराट मस्तिष्क को प्रकट नहीं होने देती, उजागर नहीं होने देती। जीवन में हम जो कुछ भी पाते हैं, वह किसी ना किसी साधन से पाते हैं। इसलिए, हमारा तर्क होता है कि सत्य को पाने का भी कोई साधन होगा। सत्य सामान्य वस्तु नहीं, समस्त जीवन का प्रेम है। जिस ढंग से मैं आपको देखता हूं, उस ढंग से मैं अपने आपको नहीं देख सकता। मैं दृश्य के साथ, दृष्टा को नहीं रख सकता, वह अलग है, बुनियादी रूप से अलग है। सत्य साधन से पाया जा सकता है।

परंतु, मोक्ष संसार की वस्तु नहीं है, इसलिए, इसे साधन से नहीं पाया जाता। यदि कोई चीज खोज रहा हूँ तो उसके लिए मुझे प्रयास करना होगा, लेकिन, मैं अपने को पाना चाहता हूँ तो मैं क्या तलाश करूँगा? उस तलाश को मैं छोड़ देता हूँ, तो उस शांति में मैं अपने आपको पा सकता हूँ। सारा संसार खोज के पाया जा सकता है, सत्य को खोज कर नहीं पा सकते। सत्य तो मैं हूँ।

मैं समस्त खोज छोड़ देता हूं, जो कि अशांति है। क्योंकि अशांति से शांति तक कोई नहीं पहुंच सकता।

भक्त वो नहीं है जो भगवान को पाना चाहता है। भक्त वह है, जिसने भगवान को पा लिया है।

सारी तलाश को मैं छोड़ देता हूँ तो उस शांति में अपने आपको पा सकता हूँ। सारा संसार खोजकर पाया जाता है, केवल सत्य को ही खोजकर नहीं पा सकते। एक बार ज्ञान का दिया जला, तो अज्ञान का अंधकार मिट गया। यह सबसे सरल प्रणाली है, जो कुछ छोड़ने के लिए नहीं कहती, आपको तो सिर्फ एक दिया जलाना है। बाकी सब अपने से हो जाता है।

मेरे मन में तो, चाहे आप कोई प्रश्न पूछें और कहीं से पूछें, मुझे लगता है कि केन्द्र की बात यही है। सब प्रश्नों का उत्तर यही है। उत्तर हजार हों, यह संभव नहीं। हजार प्रश्न हो सकते हैं, मगर उत्तर एक ही है।

प्रश्न- क्या 'अहं ब्रह्मास्मि' में भी यही सत्य है?

हां, यही है। इस शून्य में ही यह बोध शुरु होता है। उसे फिर हम जो नाम दे दें! वे नाम हमारे ऊपर निर्भर हैं। सब नाम एक से ठीक और एक से गलत हैं। केई अंतर नहीं पड़ता। चाहे ब्रह्म कह लें, मोक्ष कह लें, निर्वाण कह लें, आत्मा कह लें। जो मन आए कह लें, वे हमारे ऊपर निर्भर हैं। बस, ध्यान से ही वह जाना जाता है।

(नोट : इसके बाद स्पूल की दूसरी तरफ रिकार्डिंग है। कुछ हिस्सा मिसिंग है।)

फल की आंकाक्षा विसर्जित हो गई होगी और कर्म फिर आनंद होगा।

अभी हमारा समस्त कर्म दुख का भार है क्यांकि कर्म में हमें कोई आनंद नहीं है। कर्म के पार क्या मिलेगा, उसमें आनंद है। जो मिलेगा उसकीं आकांक्षा छिपी है। कर्म तो मजबूरी है इसलिए करते हैं, क्योंकि वो जो पाना है बिना कर्म के नहीं पाया जा सकता।

वैसी चेतना की स्थिति में कर्म आनंद हो जाता है। पाने के लिए नहीं, कर्म स्वतः आनंद हो जाता है। जैसे पक्षी गीत गाते हैं और जैसे कभी किसी कवि से कविता झरती है या जैसे झरनों का संगीत होता है; वैसे व्यक्ति में सहज, स्पॉन्टेनियस, एक आनंद की लहर व्यक्त होने लगती है। उस आनंद की लहर में से सारे कर्म भर जाते हैं। उसका समस्त कर्म दिव्य और ईश्वरीय हो जाता है।

ऐसी चेतना स्थिति को उपलब्ध करने का प्रयास भारत ने किया था। यही भारत की आंतरिक समृद्धि और संपत्ति है। भारत ने कुछ और नहीं खोजा। विज्ञान नहीं खोजा, पदार्थ के जगत के रहस्य नहीं खोजे। परमाणु बम नहीं खोजे, कोई और शक्ति नहीं खोजी। यह अद्‌भुत शांति की जीवन चेतना खोजी। कुछ लोगों ने भारत में इसे उपलब्ध किया था और उन कुछ लोगों के संक्रामक होने के कारण पूरा भारत एक भिन्न प्रकार का देश बन सका था। और आज हम जो भार से, पीड़ा से और पेरशानी से घिरे हुऐ हैं; अगर वापस उस मार्ग के थोड़े-से क्षण और उस आनंद के थोड़े-से कण हमको उपलब्ध नहीं होते जो कभी बुद्ध को, कृष्ण को या महावीर को उपलब्ध

रहे हैं तो हम जीवन को तो खो ही देंगे, हम भारत की परंपरा को भी खो देंगे। और शायद सारे जगत में थोड़ा-सा मार्ग जो बाकी बचा है मनुष्य के दिव्य जीवन से संयुक्त होने का, वह भी नष्ट हो जाएगा।

मैंने कहना शुरू किया है कि हम अपने को भी बचा सकते हैं उस मार्ग से, और हम जगत का भी मार्गदर्शन करके जीवन चेतना दे सकते हैं। लेकिन यह हमारे पिटे-पिटाए धर्म के नाम पर नहीं हो सकता। हमारी पिटी पिटाई पूजा से नहीं हो सकता। कुचले गये, रोदें गये मार्गों से नहीं हो सकता। इस सब कचरे के भीतर जो वास्तविक छिपा है, इन सब कंकड़ों के भीतर जो हीरा छिपा है, उसको उद्घाटित कर लेना जरूरी है। ये उद्घाटन हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर यह उद्घाटन कर सकता है और परिणाम में अपने लिये, तथा औरों के लिये भी मार्ग बन सकता है।

मैंने आपसे कहा कि यह बात बहुत सहज है। करेंगें तो इसकी सहजता को समझ सकते हैं। थोड़ा-सा जागें और शांत हो जायें, थोड़े-से विचारों के प्रति जागरूक हो जायें और शांत बनें। थोडा-सा वर्तमान में जीना शुरू करें। थोड़ा-से अपने भविष्य को विसर्जित होने दें और अंतराल बनने दें। और वह अंतराल आपको सब प्रकट कर देगा। उस अंतराल के पूर्व कुछ भी पढ़ना और कोई भी ग्रंथ रटना, समझना-बूझना किसी काम का नहीं; दो कौड़ी का है। वह सब बाधा है, वह सत्य को पाने मे रूकावट बन जायेगा।

रामकृष्ण के पास जब विवेकानंद पहुंचे थे तो रामकृष्ण ने कहा था--मैं सिर्फ एक ही बात तुमसे कह रहा हूँ, तुम जो जानते हो कृपा करके उसे भूल जाओ। मैं भी आज इस चर्चा में, इस पूरी चर्चा में एक ही बात को दोहराया हूँ कि जो आप जानते हैं सत्य के संबंध में, कृपा करें भूल जायें। जो भी आपने धारणायें बनाई हैं, कृपा करें फेक दें। जो भी पिटा-कुटा संस्कार मन में बैठ गया हो, कृपा करें उस धूल को झड़ा दें। और तब जो प्रकट होगा, वह आपको सत्य से, जीवन से, सत्ता से संयुक्त कर देगा।

मेरी बातों को प्रीति से सुना, बहुत-बहुत धन्यवाद।